SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

लालित्य ललित के लेखन में आधुनिकता और व्यंग्य चेतना

लालजी, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत
उर्मिला सिंह तोमर, (स्मृति शेष)
शासकीय के.आर.जी. स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Authors
लालजी, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत
उर्मिला सिंह तोमर (स्मृति शेष)
शासकीय के.आर.जी. स्वशासी महाविद्यालय,
ग्वालियर, मध्यप्रदेश, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 26/09/2022
Revised on : -----
Accepted on : 03/10/2022
Plagiarism : 00% on 26/09/2022

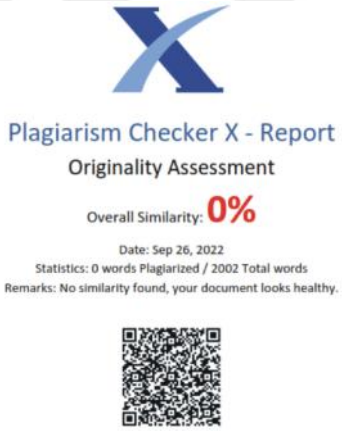

शोध सार

व्यंग्य केवल मनोरंजन करने और लोगों को हँसाने गुदगुदाने भर तक सीमित नहीं है। प्रत्येक युग मे साहित्यकारों ने विभिन्न विधाओं के माध्यम से व्यंग्यपूर्ण शैली अपनाकर सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक विसंगतियों पर प्रहार किये हैं, जिसके परिणाम स्वरूप शोषण वर्ग में अपराध बोध उत्पन्न होता रहा है। आज वर्तमान साहित्य भी व्यंग्य पूर्ण शैली द्वारा राजनैतिक, सामाजिक विकृतियों पर चोट कर रहा है। व्यंग्य व्यक्ति, समाज व संस्थागत विकृति को विरेचित करता है। अतः हम कह सकते है कि व्यंग्य समाज को अपने अन्तर्गत में झांकने के लिये विवश करता है। समय–समय पर विकृति को झकझोरने वाला व्यंग्य ऐसा प्रभाव डालता है कि व्यक्ति अपनी कमजोरी को स्पष्ट देख पाता है। जो कार्य बड़े–बड़े ग्रंथ और उनके उपदेशक नहीं कर पाते वह कार्य एक व्यंग्य सूक्ति अथवा पंक्ति कर देती हैं। आज भी व्यंग्य साहित्य सामाजिक चेतना को जगाने की अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहा है।

मुख्य शब्द

लालित्य ललित, आधुनिकता, व्यंग्य चेतना.

प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रणेता माने जाने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र समेत उनके युग भारतेन्दु युग के विभिन्न कवियों और रचनाकारों में हास्य–व्यंग्य का पुट निरंतर देखा जा सकता है। भारतेन्दु युग में समस्या पूर्ति के नाम से प्रचलित काव्य में मसखरी, व्यंग्य और हास्य का ही बोलबाला था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारत दुर्दशा में अंग्रेजियत पर विश्वास करने वाले भारतीयों को उनके द्वारा सामाजिक व धार्मिक स्वतंत्रता पर फटकारते हुये

लिखा है –''मस्जिद मंदिर, गिरजों में देखा मतवालों का जो दौर, अपने रंग में रंगा दिखाया सबका तौर, सिवा झूठी बातों व बनावट के न नजर आता कुछ और।''[1]

भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध रचनाकार पं. प्रतापनारायण मिश्र के व्यंग्य बड़े चुटीले और धारदार हैं। उनके द्वारा संवेदनहीन व्यक्ति पर किया गया चुटीला व्यंग्य आज सामान्य जन मानस की जबान पर मिलता हैः

''पढ़ि कमाय कीन्हो कहा, हरे न देश क्लेश,
जैसे कंता घर रहे, तैसे रहे विदेश।।[2]

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। समाज में प्रचलित मान्यताओं, विसंगतियों, विक्रत मानसिकताओं को प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। साहित्य एक प्रकार से समाज में व्याप्त बुराईयों पर प्रहार करते हुए उन्हें समाप्त करने का प्रयास करता है। मुगलकाव्य में धर्म परिवर्तन एक बड़ी सामाजिक समस्या थी जिसका मूल कारण धर्म के वास्तविक उद्देश्य से भटका हुआ जनमानस था। कबीरदास जी सहित संत काव्यधारा के अन्य कवियों–संतों ने समाज को धर्म के गूढ़ तथ्यों से अवगत कराते हुए, धार्मिक–सामाजिक आडंबर का विरोध किया। इसी प्रकार ब्रिटिश शासन में समाज अलग–अलग खाँचों में विभाजित था। भारतेन्दु युग के कवियों – रचनाकारों ने समाज को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास व्यंग्य के माध्यम से किया और राष्ट्र की संकल्पना को विचार मंच पर प्रस्तुत किया।

हिन्दी साहित्य मे शुक्लयुग गद्य साहित्य का मील का पत्थर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने न केवल सामाजिक विकृतियों को अपने व्यंग्य के माध्यम से उकेरने का प्रयास किया बल्कि हास्य व्यंग्य शैली को मानक रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने निबंधों में हास्य व्यंग्य मिश्रित कथ्यों को बड़े ही पैने अंदाज में प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं – ''लो भिया! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय निग्रह, तुम्हारी मान–अपमान समता, तुम्हारी तप अनुकरणीय हैं, तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, अन्याय विग्रहणीय है, तुम धन्य हो तुम्हें धिक्कार है।''[3]

आधुनिक काल में गद्य और पद्य दोनों ही साहित्य में भाषा परिष्कार के साथ ही हास्य और व्यंग्य परिष्कृत होकर एक सशक्त विधा के रूप में स्थापित हुआ है। व्यंग्य रचनाकारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक साहित्य का प्रणेता कहा जाता है बल्कि नवजागरण का अधिष्ठाता भी कह सकते है। भारतेन्दु युग के सभी रचनाकारों बाबा सुमेरसिंह, बदरीनारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र, राधा कृष्णदास, अंबिका दत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, एवं बालमुकुंद गुप्त आदि प्रमुख व्यंग्यकारों ने राष्ट्रीयता की भावना को उकेरने का कार्य किया है। इन रचनाकारों ने अपनी बहुआपामी प्रतिभा के माध्यम से गद्य क्षेत्र में निबंध, नाटक, लोक नाटिका आदि विधाओं के साथ–साथ समस्यापूर्ति, होरी आदि में व्यंग्य हास्य का पुट सर्वत्र मिलता है।

हिन्दी साहित्य के विकास क्रम में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्य मील का पत्थर है। उनका लेखन गंभीर विषयों का चिन्तन निबंध के माध्यम से व्यक्त किया गया है। निबंध साहित्य गद्य का मानक रूप होता है। उसमें गहन सामाजिक विसंगतियों पर चर्चा की गई है। शुक्ल युग के रचनाकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हरिशंकर परसाई श्रीलाल शुक्ल एवं काका हाथरसी आदि प्रमुख है। स्वतंत्रतापूर्ण भारतीय सामाजिक विसंगतियों पर इनके व्यंग्य बडे तीखे प्रहार करते हैं। आर्थिक विषमता सामाजिक समता के रास्ते की बडी रूकावट है, जो प्रत्येक समाज में गहरी खाई उत्पन्न करती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह व्यंग्य बहुत सटीक है, वे लिखते है –''मोटे आदमियों तुम जरा से दुबले हो जाने, अपने अंदेशे से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियों पर माँस चढ़ जाता है।''[4] प्रत्येक समाज में आर्थिक विषमता समाज में विखराव की स्थिति उत्पन्न होने का कारण बनती है। शुक्ल युग के व्यंग्यकारों ने जहाँ एक ओर आर्थिक विषमता को अपने व्यंग्य लेखन का माध्यम बनाया वहीं ऊँच–नीच की भावना पर भी करारे व्यंग्य किये है। हरिशंकर परसाई द्वारा 'विकलांग श्रद्धा का दौर 'वैष्णव की फिसलन प्रेमचन्द के फटे जूते आदि सामाजिक विषमता को केन्द्र में रखकर की गई रचनाएँ है। श्रीलाल शुक्ल आंचलिक साहित्यकार हैं। उन्होंने ग्रामीण जीवन से जुड़ी सामाजिक विसंगतियों को उकेरा है। उनकी प्रमुख रचनाएँ 'राग दरबारी 'मकानः सूनी घाटी का सूरज पहला पड़ाव स्वामी से ज्यादा स्वामिभक्त निर्धन पड़ोसी की कथा गिरफ्तारी आदि रचनाओं में आर्थिक शोषण का व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है।

भारतेन्दु युग के सबसे सशक्त व्यंग्यकार बालमुकुंद गुप्त जी हैं। उनके भारत मित्र में प्रकाशित 'शिव शंभू के चिठ्ठे हिन्दी का प्रथम व्यंग्य स्तम्भ है। इसी परंपरा को लालित्य ललित अपनी रचनाओं में समेटे हुए है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रयोन्तर काल तथा वर्तमान की परिस्थितियों में भिन्नता होते हुए भी एक स्वर पर समानता है। आज के भारत मे राजनैतिक स्थिरता के बाद भी गरीब और अमीर के बीच की खाई चौड़ी हुई है और स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व और पश्चात् ऐसी ही परिस्थितियां रही है। सत्ता के केन्द्र में रहने वालों तथा आम जनमानस के बीच की खाई को पाटने का प्रयास व्यंग्य साहित्य पहले भी करता रहा है और आज भी कर रहा है। लालित्य ललित का साहित्य भी हमें इसी ओर इशारा कर रहा है। लालित्य ललित के व्यंग्य संग्रहों और उसकी कथावस्तु को यथार्थ रूप में विश्लेषित करते हुए डॉ. हरीश कुमार की यह टिप्पणी बहुत ही महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं ''व्यंग्य का उद्देश्य प्रवृत्ति पर प्रहार करना रहा है न कि व्यक्ति विशेष पर और ललित जी के व्यंग्य, मानवीय प्रकृतियों को ही अपने व्यंग्य केंन्द्र मे रखकर चुटकी लेने है ललित जी के व्यंग सोद्देश्य हैं और उनके व्यंग्य किसी को आहत या शर्मिन्दा न करते हुए यथार्थ और आदर्श के बीच संतुलन रखने वाले व्यंग्य हैं। वैचारिकता के स्तर पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। ललित जी ने जैसा देखा वैसा लिखा और अपनी नवीन चमत्कृत भाषा शैली से व्यंग्य उत्पन्न किया है। ललित जी के व्यंग्यों में भाषाई कौतूहल है और व्यंग्य पढ़ते समय उत्सुकता बनी रहती हैं।''

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्ता का हस्तान्तरण भले ही भारतीय लोगों में हुआ किन्तु समाज के निचले पायदान पर बैठे व्यक्ति के जीवन में स्वतंत्रता के अर्थ को भली–भाँति समझने का अवसर ही नहीं मिला था। वास्तव में आजादी के सुख को अन्तिम पायदान के व्यक्ति ने बहुत बाद में पाया। इसका प्रकरण था समाज का अलग–अलग खानों में बँटा होना। यही कारण था कि जिस परिवेश से व्यंग्य के लिये उपयुक्त कथ्य भारतेन्दु युग में उपलब्ध रहे वहीं से प्रेमचन्द होते हुए वर्तमान व्यंग्यकार भी जो देख रहे हैं वहीं लिख भी रहे है। वर्तमान समय में लालित्य ललित समाज में फैली विषमता और बाजारवाद के बीच सोशल मीडिया के छलावों से बीमार समाज की विद्रूपता पर उनकी पैनी नजर बनी रहती है। समाज, साहित्य और व्यंग्य के मध्य अर्न्तसम्बंध को दर्शाने वालवी प्रतिस्पर्धा पर डॉ. संजीव कुमार की टिप्पणी बहुत ही महत्वपूर्ण है वे लिखते है ''हिन्दी साहित्य में व्यगं की परपाटी लम्बे समय से चली आ रही है। वैदिक, पौराणिक और मध्यकाल को छोड़कर अगर आधुनिक काल पर नजर डालें तो एक लम्बी फेरिहस्त दिखाई देती है। खड़ी बोली के विकास के प्रथम चरण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर अब तक की अवधि में हिन्दी व्यंग्य ने कई सोपान तय किये है। यानी हिन्दी व्यंग्य इस बीच कई मोड़ से गुजरा है, इसके क्षेत्र में समय–समय पर उतार–चढ़ाव आते रहे है। इसके बाबजूद बहुत से लोग व्यंग्य को गंभीरता से लेने में लोग हिचकते रहे और व्यंग्य को अन्य विधाओं की अपेक्षा दोयम दर्जे का समझने की प्रवृत्ति भी तथाकथित आलोचकों में रही।''

व्यंग्य समाज के लिये ही लिखा जाता है। व्यंग्य समाज की सुप्त होती चेतना को झकझोर कर जगाने के उद्देश्य से लिखा जाता है। व्यंग्य को लिखने के लिए समाज की विकृतियां उसे कच्ची सामग्री प्रदान करती हैं और उसी विकृति को निस्तेज करने के लिए व्यंग्य लिखा जाता है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि समाज और व्यंग्य एक–दूसरे के पूरक होते है। सामाजिक परिष्कार में व्यंग्य जिस उद्देश्य को लेकर चला था, आज भी उसी लीक पर चल रहा है। कुछ आलोचक और विद्वान व्यंग्य को मनोरंजन के लिए लिखने और बताने की चेष्टा करते रहे किन्तु वे सफल नहीं हुए। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को लिखना पडा था कि 'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होन चाहिए उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए। प्रत्येक युग में व्यंग्य को मनोरंजन की ओर घसीटने का प्रयास अवश्य होता रहा किन्तु वास्तव में व्यंग्य आज भी अपने मौलिक उद्देश्य से नहीं डिगा। इस सम्बंध में डॉ. संजीव कुमार का मत स्पष्ट मत है, वे लिखते हैं ''जिस लेखक ने व्यंग्य को मनोरंजन का गणवेश पहनाकर प्रस्तुत किया वह उतरते ही अप्रासंगिक हो गया। व्यंग्य निरर्थकता या नकार का सूत्रधार नहीं बल्कि उसका काम बहुत गंभीर और जोखिम भरा है। व्यंग्कार को आत्मनिरीक्षण करना पड़ता है कि उसने जो राह चुनी है उसे पकड़े रखेगा चाहे लाख झंझावतों से जूझना पड़े। उसे परसाई जी के साथ हुए हादसे से भी सबके लेने की जरूरत है तो शरद जोशी से भी जिन्हे अपने लेखन के कारण जीवन में बड़े खामियाजे भुगतने पड़े थे।''

निष्कर्ष

व्यंग्यकार समाज का एक प्रकार से शल्य चिकित्सक होता है। वह समाज के जिस अंग या हिस्से में बुराई देखता है वहीं विसंगतियों, विषमताओं और विद्रूपताओं की चीर–फाड़ प्रारम्भ कर देता है। ऐसा कर पाना उसके लिए बहुत आसान नहीं होता, इसके लिए उसे बडी कीमत भी चुकानी होती है। सबसे पहला तो यही है कि जो लेखक या कवि समाज की विकृति को लेकर व्यंग्य लिख रहा है, समाज उसका उसी धरातल पर मूल्यांकन भी करता है। सत्य तो यह भी किस सत्य का संदर्भ तो वहीं ले सकता है जो स्वयं ही सत्य के मार्ग का अनुसरण, करने वाला हो व्यंगकार समाज का शोधक और उसकी विकृतियों का परिष्कर्ता तब ही बन सकता है जबकि वह स्वयं में सामाजिक मूल्यों को जीने वाला होता है। वह किसी दबाव लोभ या लालच से परे रहकर ही व्यंग्य के यथार्थ उद्देश्य को स्पर्श कर सकता है। इस संदर्भ मे गौतम सान्याल एक स्थान पर कहते है ''राज्याश्रय हो या धर्माश्रय, व्यंग्य आश्रम में कभी नहीं पलता है। वह अन्य और वन्य प्राणी है जो आलतू–फालतू–पालतू कभी नही होता। वह सत्ता की छाँव में कभी नहीं फलता, क्योंकि फल ही नही सकता। व्यंग्य विसंगतियों और बेढ़व का मात्र चिन्हीकरण नहीं है, वह दुनियादारी में एक सुचिंतित, तर्कपूर्ण और सक्रिय हस्तक्षेप भी है। व्यंग्य मात्र विरोध नहीं प्रतिरोध भी है। व्यंग्य विपक्ष का स्वर, प्रतिपक्ष का बेफीस वकील, सत्य का गुमाश्ता और टकराव का पेशकार है।''

सन्दर्भ सूची

1. भारत दुर्दशा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर – 2004।
2. प्रतापनारायण मिश्र के स्फुट छंद से।
3. चिंतामणि भाग–1, रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयोग 2000 पृ. 61।
4. चिंतामणि भाग–1, रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयोग 2000।
5. डॉ. लालित्य ललित, हरीश कुमार पाण्डेय जी, कहिन प्राक्कथन पृ. 07।
6. डॉ. संजीव कुमार व्यंग्य विमर्श के वैचारिक आयाम – लालित्य ललित पृ. 26।
7. संपादक डॉ. संजीव कुमार पाण्डेय जी की रॉपचिक दुनिया पृ. 07।
8. संपादक डॉ. संजीव कुमार पाण्डेय जी की रॉपचिक दुनिया पृ. 08।

****